P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-6* September- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

# व्याकरण एवं मीमांसा न्याय आदि दर्शनों में विध्यर्थ विमर्श

**कृष्ण राम**
एसिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
आई. जी.एन. कालेज,
धनोरा, कुरुक्षेत्र

**सारांश**

व्याकरण शास्त्रा पद ;शब्दद्ध शास्त्रा है तथा पदों ;शब्दोंद्ध का विवेचन ही इसका मुख्य उद्देश्य है। अतः विधि ;पदद्ध शब्द का विवेचन भी व्याकरण शास्त्रा में विस्तृत रूप में हुआ है। पाणिनि व्याकरण के सर्वस्वीकृत आचार्य हैं। उनकी अष्टाध्यायी व्याकरणशास्त्रा का मूर्धन्य ग्रन्थ है। उन्होंने 'विधिनिमन्त्राणामन्त्राणाधिष्ट सम्प्रश्नप्रार्थनेषुलिघ्'[1] सूत्रा में 'विधि' शब्द का उल्लेख किया है। परवर्ती आचार्यों ने विधि शब्द की विस्तृत व्याख्या की है जिसमें इसके अर्थ के पहलू पर तथा मुख्य रूप से दार्शनिक पहलू पर विचार किया गया है। व्याकरण के अतिरिक्त मीमांसा और न्यायशास्त्रा के ग्रन्थों में भी इसका विवेचन विस्तार से किया गया है। यद्यपि प्रस्तुत प्रबंध का ध्येय व्याकरण सम्मत विधिलिघ् विचार है तथापि मीमांसक एवं नैयायिक मत भी यथास्थान विचारणीय है, जिससे व्याकरण सम्मत अवधरणा पूर्णतया स्पष्ट हो सके। प्रस्तुत अध्याय में – प्रभाकरमिश्र, कुमारिलभट्टड और मण्डनमिश्र आदि प्रमुख मीमांसकों और वैयाकरणों के विवेचन पर मुख्य रूप से विचार किया गया है तथा नैयायिकों के मत को उन्हीं के ग्रन्थों से उद्धरण के रूप में उद्धृत किया गया है।

**मुख्य शब्द :** मीमांसा दर्शन, विधि, वैदिक मन्त्र।

**प्रस्तावना**

मीमांसा दर्शन में विधि शब्द का अर्थ वैदिक मन्त्रों की व्याख्या की दृष्टि से किया गया है। मीमांसा दर्शन के अतिरिक्त न्याय व्याकरणादि शास्त्रों की दृष्टि में विध्यर्थ एवं दर्शन पक्ष को भी प्रस्तुत करना शोध पत्र का विषय रहा है।

**शोध पत्र का उद्देश्य**

पाणिनीतर अन्य परवर्ती आचार्यो के विध्यर्थ विमर्श को स्वष्ट रूप से दर्शाना ही शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है। प्रस्तुत शोध–पत्र से विध्यर्थ के साथ–साथ उसका दार्शनिक पक्ष भी उभर कर सामने आता है।

**साहित्यावलोकन**

मीमांसकों ने विधि शब्द और विध्यर्थ पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया है, वैदिक मन्त्रो का व्याख्यान प्रस्तुत करना ही इनका मुख्य लक्ष्य रहा है। मीमांसको के अनुसार वैदिक वाक्य ही विधि वाक्य है जिसमें प्रेरणा निहित होती है। अनेक विद्वानों ने विध्यर्थ को लेकर जो अधोलिखित ग्रन्थो में विस्तृत चर्चा की है।

1. अर्थसंग्रहः, लौगाक्षीभास्कर, सं. डॉ. वाचस्पति उपाध्याय,
2. विधिविवेकः, मण्डनमिश्र, सं. महाप्रभुलाल गोस्वामी तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1978
3. मिश्र मण्डनः स्पफोटसिद्धिः गोपालिकाटीकोपेता, मद्रास यूनिवर्सिटी, 1917
4. मिश्र, जीवनाथ, न्यायसिद्धान्तमजरी, जानकीनाथ, काशी, 1916

साहित्य अवलोकन की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से विध्यर्थ को लेकर व्याखान दिया गया है।

**मीमांसा मत**

मीमांसकों ने भी विधि शब्द और इसके अर्थ पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है, वैदिक मन्त्रों की व्याख्या ही उनका मुख्य उद्देश्य है। उनके अनुसार वैदिक वाक्य विधि वाक्य है, जिसमें प्रेरणा निहित होती है। जैसे 'स्वर्गकामो{श्वमेधेन यजेत' इत्यादि वाक्य में स्थित 'यजेत' पद में लिघ् बोधक प्रत्यय है। यज् धतु में लिघ् प्रत्यय होने से 'यजेत' ऐसा पद बना। यज् + इत = यजेत, यहां इत लिघ्बोधक प्रत्यय है। लिघ् प्रत्यय विधि प्रत्यय है।[2] 'यहाँ विधि प्रत्यय का अर्थ आप्त–अभिप्राय से लिया गया है। आप्त–अभिप्राय से तात्पर्य वेद वक्ता पुरुष से है। आप्त अभिप्राय ही विधि प्रत्यय का अर्थ है।[3]

**प्रभाकर मत**

प्रभाकर मतानुसार विधि प्रत्यय का अर्थ नियोग है।[4] नियोग शब्द कर्त्रार्थ में 'घ×ा्' प्रत्यय से निष्पन्न होता है। नियोग का अर्थ 'नियुघक्ते' है। अपूर्व, कार्य इत्यादि शब्द नियोग के समानार्थक है। नियोज्य पुरफष को नियोग अर्थात् कार्य की सिद्धि के लिए नियुक्त करना ही 'नियोग' है।[5] नियोग का दूसरा नाम कार्य है। कार्य ही कर्ता का साध्य अर्थात् कर्ता का उद्देश्य है। कृतिसाध्यत्व के कारण ही 'कार्य' ऐसा उच्चारण किया जाता है। कृति का अर्थ प्रयत्न होता है, तथा कृति साध्य का अर्थ है – प्रयत्न द्वारा पूर्ण ;सिद्धद्ध होने वाला कार्य। कार्य ही अपनी सिद्धि के लिए नियोज्य पुरफष को नियुक्त करता है तथा इसे नियोग नाम से जाना जाता है अतएव 'स्वसिद्धये स्वात्मनि निय×जानं नियोग इति।'[6] विधि वाक्य सुनने के पश्चात् जो पुरफष 'यह मेरा कार्य है' ऐसा समझता है, वही नियोज्य है। 'स्वर्गकामो यजेत' इस वाक्य में स्वर्गकाम से अभिप्राय साध्य स्वर्ग की कामना करने वाले पुरफष से है। स्वर्ग की कामना करने वाला पुरफष उस प्रकार के कर्म में नियोजित होता है यदि कार्य स्वर्गकामना करने वाले पुरफष के इष्ट स्वर्ग का साध्क होने की योग्यता रखता है।

इष्ट स्वर्ग पफल से अव्यवहित पूर्व काल में विद्यमान वस्तु ही स्वर्ग रूपी पफल का साध्न होने की योग्यता रखती है। यागक्रिया नित्य नहीं है वह क्षणभर में विनाशशील है अतः कालान्तर में होने वाले स्वर्ग रूप पफल के अव्यवहित पूर्व में वह याग रूप क्रिया उपस्थित नहीं होती। इसीलिए याग–रूप क्रिया कार्य रूप में स्वर्ग की इच्छा करने वाले नियोज्य पुरुष के साथ अन्वित नहीं हो सकती, जो काम्य पफल का साध्न नहीं है, उस प्रकार के कार्य में कभी भी स्वर्गकाम पुरुष नियोज्य रूप से अन्वित नहीं हो सकता।[7] इसलिए 'स्वर्गकामो यजेत', यहां याग क्रिया के अतिरिक्त अन्य प्रमाण से न जानने योग्य कार्य ही लिघ् आदि प्रत्यय के द्वारा जाने जाते हैं। इस प्रकार कार्य के ही अभिधयक लिघादि विधि प्रत्यय होते हैं। यह कार्य वाक्य के अतिरिक्त किसी अन्य प्रमाण के द्वारा नहीं जाना जाता है। प्रमाणान्तर से नहीं जाना जाने वाला यह अपूर्व ही है। कार्य का विषय ही करण है। कार्य के स्वरूपप्रतीति में जो विषयरफप में भासित होता है वह ही कार्य के स्वरूप के निवर्तक के रूप में करण रूप में भासित होता है।[8] कार्य की प्रतीति में जो विषयरूप में अपेक्षित होता है वह ही कार्य की उत्पत्ति में करण होता है। कार्य प्रयत्न द्वारा उत्पन्न शरीर है। कृतिसाध्य ही कृति के लिए प्रधनीभूत कार्य है जैसे ज्ञान नियत और सविषयक होता है उसी प्रकार कृति भी नियत और सविषयिका होती है। और वैसे ही कार्य की प्रतीति में कृति के विषय की अपेक्षा होती है। विषय के बिना कृति की प्रतीति ही नहीं होती है। उत्पत्ति क्रिया सकरणिका होती है, करण के बिना क्रिया नहीं हो सकती। धत्वर्थरूप करण के द्वारा नियोज्यपुरुषरूप कर्त्ता कार्य का उत्पादक होता है। कार्य उत्पद्यमान अर्थात निवर्त्य होता है, कार्य का निवर्तयिता नियोज्य और कारण धत्वर्थ जिसकी कार्य के पूर्व विषय के रूप में प्रतीति होती है वही कार्य की उत्पत्ति में करणरूप में प्रतीत होता हैं प्रथमतः नियोज्यपुरफष के समीप में विधिवाक्य के द्वारा प्रतीति होती है। तत्पश्चात् नियोज्यारूपकर्ता पुरफष के द्वारा कार्य का निष्पादन होता है। प्रभाकर विधि का अर्थ कार्यता मात्रा स्वीकार करते हैं और वह कृति साध्यता है जैसे – जो विषय बनाने वाली बुद्धि प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाली इच्छा उत्पन्न करती है, वह विधिप्रत्यय का प्रतिपाद्य है प्रवृत्तिजनित्राी इच्छा को उत्पन्न करने वाले ज्ञान का प्रकार विधि है – ऐसा अर्थ है। और प्रवृत्तिजनित्राी इच्छा कृतिसाध्यता रूप प्रकार वाली है। उस इच्छा की जननी कृतसाध्यतारूप प्रकार वाली बुद्धि है।[9] यहाँ यह अभिध्य है। प्रभाकर मत में इष्टसाध्नता भी विधि का अर्थ होती है। 'अतएव उनके द्वारा 'सन्ध्यावन्दन करें' कल×ज भक्षण न करें' इत्यादि विधि निशेध में नित्य–अपूर्व, निशेध–अपूर्व व पण्डापूर्व (अकि×चत्कर अपूर्व) भी कल्पित किया जाता है।' प्रभाकर मत में अन्यथाख्याति नहीं है और इस प्रकार उस मत में कार्यता ही विधि का अर्थ है यही आशय है। प्रभाकर मत में कार्यता से अपूर्व के विध्यर्थ रूप होने के कारण विशेषणांशरूप कार्यता भी उस विधि का अर्थ है।[10] प्रभाकर मत में याग के शीघ्रनष्टधर्मा होने के कारण स्वर्गोत्पत्ति के काल में उस याग के अभाव के कारण यागजन्य अपूर्व कल्पित किया जाता है। ओर उस प्रकार वेद में कार्यत्व–विशिष्ट अपूर्व के उत्पन्न होने के कारण उस अपूर्व में अभिध शक्ति ही है परन्तु लोक में 'पचेत' इत्यादि वाक्यों में अपूर्व में तात्पर्य सम्भव न होने के कारण कार्यता में लक्षणा ही हैं लौकिक लिघ् की कार्यता में शक्ति है। 'वेद में तो स्वर्गकाम व्यक्ति के साथ अन्वय की उपपत्ति न होने के कारण क्रियाभिन्न कार्य में शक्ति है।

**कुमारिलभट्टद्ध**

कुमारिलभट्टद्ध के अनुसार लिघादि का अर्थ अभिध है।[11] यह अभिध शब्दशक्तिरूपा नहीं है। यह उससे कि×चत् भिन्न है। कुमारिल अभिध को सर्वथा एक नवीन पदार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके मत में विधि का व्यापारीभूत विधिसमवेत भावना नाम वाला अतिरिक्त पदार्थ विशेष अभिध है। अथवा सरल शब्दों में कहें तो भावना ही अभिध शब्द से अभिहित किया गया है। इस अभिध का प्रवर्तक ज्ञान है और भावना में भवनात्व रूप से विधि की शक्ति है। पुरुष का व्यापार याग विषयक भावना से जन्य होता है। उस यागविषयक व्यापार में अभिधजन्यत्व क. अन्वय होने पर व्यापार का इष्ट जो इष्टसाध्नत्व है वह ही अन्वय का हेतु बन जाता है। इसी योग्यता के बल से ही लिघर्थ ;अभिधद्ध में इष्टसाध्नत्व के ज्ञान का बोध होता हैं इस प्रकार अनन्यलभ्य इष्टसाध्नत्व में लिघादि का शक्तिग्रह नहीं होता। यागविषयक भावना जन्य पुरुषनिष्ठ व्यापार आख्यात सामान्य की शक्ति से लभ्य कृतिरूप व्यापार में जन्यत्व सम्बन्ध से भावना के अन्वय की सिद्धि के लिए व्यापरनिष्ठ इष्टसाध्नता के अन्वय का हेतु या प्रयोजक बन जाता है। इसी योग्यता से उसके इष्टसाध्नत्व का भान भी होता है अथवा विधि के बल से ही स्वर्गदिसाध्नत्व का ग्रहण हो जाता है। और

इष्टसाध्नत्व आख्यातार्थ रूप प्रवृत्तिरूप व्यापार में अन्वित होता है। और प्रवृत्ति में इष्टसाध्नता का ज्ञान ही हेतु होता है।

अभिध द्वारा कथित भावना जब शब्द के आश्रय वाली हो जाती है तब शब्द पर आश्रित होने के कारण यह भावना शाब्दी भावना कहलाती है।[12] तात्पर्य यह है कि भाट्ट मत में लिघ् लोट् तव्यत् आदि युक्त वाक्यों में दो प्रकार की भावना प्रतीत होती है, पहले शाब्दी भावना और पिफर आर्थी भावना। आख्यात मात्रा आर्थी भावना के रूप में जानी जाती है। लिघ् लोट् आदि शाब्दी भावना के रूप में।

**मण्डनमिश्र मत**

मण्डनमिश्र के मत में इष्टसाधनत्व ही विध्यर्थ है।[13] कृतिसाध्यत्व तो लोक से ही जाना जाता है इसलिए वहां विधि की कोई आवश्यकता नहीं है 'याग मेरी कृति ;मेरा प्रयत्नद्ध का साध्य है', मेरे कृतिसाध्य के विरोधी धर्मों के अध्किरण न होने के कारण अनुमान के द्वारा ही कृतिसाध्यत्व का ज्ञान होता है और इस प्रकार कृतिसाध्यत्व के ज्ञान के प्रवर्तक होने पर भी – अनन्यलभ्यो हि शब्दार्थः' इस न्याय से अनुमान के द्वारा ही कृतिसाध्यत्व का ज्ञान प्रवर्तकत्व के लाभ से वहां विधि की शक्ति नहीं है।[14] स्वर्ग आदि का इष्टसाध्नत्व तो अन्य प्रमाणों के द्वारा ज्ञात नहीं हो सकता अपितु वेदवाक्य से ही उसे जाना जा सकता है। इसलिए अनन्यनीय अर्थात् आम्नायभिन्न वाक्य से अलभ्य होने के कारण वहां विधि की शक्ति स्वीकार की गई है।

**न्यायमत**

न्यायमत में विधि का अर्थ इष्टसाध्नत्व है। कुमारिल भट्टद्व के अनुसार इसमें कोई विशेष बात नहीं है। न्यायमत में क्रियागत इष्टसाध्नत्व विधि का अर्थ है। अर्थात जब याग क्रियारूप में उपस्थित होता है तब ही इष्ट साध्नत्व रूप में स्वीकृत किया जाता है और भाट्टमत में याग प्रर्वत्त होने के लिए इष्ट साध्नत्व रूप में स्वीकृत है भाट्ट मत में प्रवृत्तिगत ही उसके इष्ट का साध्नत्व है। इष्टसाध्नत्व कार्य में प्रवृत्ति होने में ही निहित है। भाट्ट मत में अभिध का उपागमन तथा न्याय मत में अनुपागमन होता है।[16]

न्यायकोशकार ने वात्स्यायन को उद्धृत करते हुए कहा है – 'विधिर्विधयकः। अयं विधिर्ब्राह्मणभागः।'[17] अर्थात् विधि विधयक है और यह ब्राह्मण का अंश हैं पिफर कहते हैं– 'अभिध ही लिघ् का अर्थ है, और वह ही प्रवृत्ति का हेतु है ऐसा जाना जाता है। यहां विधि शब्द का प्रयोग इष्टसाध्नत्वादि रूप विध्यर्थ में दिखाई देता है। इसका प्रमुख अर्थ है। यहां विधयक ही इसका प्रमुख अर्थ है। जो वाक्य विधयक अथवा प्रेरक है वह विधि है। विधि तो नियोग अथवा अनुज्ञा का ही अपर पर्याय है। जैसे 'अग्निहोत्रां जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्यादि।'[18] पुनः कहते हैं।[19] अर्थात् इष्टसाध्नताबोध्क प्रत्यय के सहित उच्चरित ही 'समभिव्याहृत' वाक्य होता है। अथवा विधि का अभिधयक प्रत्यय उसका घटित वाक्य होता है। और उसका अर्थ विधन करते हैं – विधिरूपशब्द के द्वारा प्रतिपादित यह विधि इष्टसाध्नत्वादि है उसका अभिधयक वाचक है, अथवा अर्थविशेष अभिधयक प्रत्यय है। और वह प्रत्यय लिघ् लोट्, लेट्, तव्य, कृत्य प्रत्ययरूप है।

कोशकार नैयायिकों को उद्धृत करते हुए कहते हैं – 'विधि प्रत्ययार्थ विधि है'। व्युत्पत्ति की गई – यहाँ विधि शब्द का प्रयोग कर्मवाच्य में विहित 'विधियते इति' विधि रूप से है इस प्रकार इष्टसाध्नत्वादि विधि के अर्थ हैं। यह एक धर्म है जो प्रवर्तक के ज्ञान का विषय है और यह धर्म जरन्नैयायिकों के दार्शनिक पद्धति में कृतिसाध्यत्व को विधि का अर्थ न मानकर बलवदनिष्ट अजनकत्व को विशेषण के रूप में रखना अपरिहार्य है। क्योंकि तृप्तिरूप सुखात्मक इष्टसाध्नता का सम्पादन होने पर भी मध्ु और विष से मिश्रित अन्न का भक्षण कृतिसाध्य भी है, जिसकी चरम परिणति अनिष्ट मरण ही होगा। इसलिए मरणरूप बलवदनिष्ट कारक मध्ु विष सम्मिश्रित भोजन में प्रवृत्ति वारण के लिए उपर्युक्त विशेषण देना आवश्यक हो जाता है।[20]

न्यायकोश में उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट करते हैं।

'कल×ज का भक्षण नहीं करना चाहिए', यहां न×् बोध्यमान है श्येनयाग हिंसारूप नहीं है जैसे 'श्येनेनाभिचरन् यजेत' इत्यादि में बलवान् अनिष्ट का अभाव रूप विध्यर्थ द्योतित होता है। जैसे 'ओदनकामः पचेत' तथा 'स्वर्गकामः यजेत' इत्यादि में ओदन स्वर्गादिरूप जो पफल उसका साध्नत्व पाक याग आदि क्रिया प्रतीत होती है।[21]

**नव्य नैयायिकों का मत**

नव्य नैयायिकों के मत में प्रवर्तक की चिकीर्षा में जिन विशेषणों से विशिष्ट ज्ञान हेतु बनता है वही तत्प्रकारक विशिष्ट ज्ञान विधि है कृतिसाध्यत्व आदि ज्ञान से चिकीर्षा उत्पन्न होती है और उस चिकीर्षा से ही प्रवृत्ति होती है, यही विधि का समुदितार्थ है।[22]

कृतिसाध्यत्व आदि पदों का प्रयोजन बताते हैं। कृतिसाध्य आदि पदों का प्रयोजन कहते हैं। 'पघैंद्व समुद्र को पर नहीं कर सकता' इत्यादि में न×ादियों से समुद्र तरणादि पघड्ढ प्रभृति कृतिसाध्य निशेध के बोध् से अवश्य ही कृतिसाध्यत्व को लिघ् का अर्थ स्वीकार किया है। 'तृप्तिकामो जलं न ताडयेत् इत्यादि में जलताडनादि से तृप्तिकामरूपी इष्टसाध्नत्व का निशेधान्वय की अनुपपत्ति इष्टसाध्नत्व को लिघ् का अर्थ स्वीकार किया है। दूसरा तो 'चैत्यं न वन्देत' वाक्य प्रमाण के अनुरोध से इष्टसाध्नत्व का विध्यर्थ आवश्यक है, ऐसा कहते हैं। 'कल×ज का भक्षण नहीं करना चाहिए इत्यादि में कल×जभक्षणादि बलवान विध्न के उत्पादक की निशेध अनुपपत्ति से बलवान विघ्न के अभावत्व को लिघर्थ अवश्य स्वीकार करना चाहिए। कल×ज मांसविशेष को कहते हैं।[23]

**व्याकरण मत**

आचार्य पणिनि 'विधि निमन्त्राणामन्त्राणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषुलिघ्[24] सूत्रा के द्वारा विध्यादि अर्थों में लिघ् का विधन करते हैं। विध्यादि में प्रवर्तना ही मुख्य है, अतः प्रवर्तना ही लिघ् का अर्थ माना जाता है। प्रवृत्ति के अनुकूल व्यापार का नाम प्रवर्तना है। प्रवृत्ति भृत्यादि में निहित होती है। उसके अनुकूल व्यापार प्रेरणा देने वाले गुरु आदि में निष्ठ होता है।

**पत×जलि**

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-6* September- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

महर्षि पत×जलि ने विधि का अर्थ 'प्रेषण' स्वीकार किया है अर्थात अपने से निकृष्ट (भृत्यादि) को किसी कार्य में प्रवृत्त करवाना ही विधि है। अर्थात् किसी प्राणी विशेष को कार्य विशेष में प्रवृत्त कराना ही विध्यर्थ है।[25]

कैयट विधि की व्याख्या करते हुए कहते है। 'भृत्यादेः कस्यचित् क्रियायां नियोजनम्' अर्थात भृत्यादि को किसी क्रिया में नियुक्त करना ही विध्यर्थ है।

**भर्तृहरि**

भर्तृहरि विधि निमन्त्राणामन्त्राण अधीष्ट इन चारो में प्रवर्तनात्व को ही प्रमुख मानते है। अर्थात् 'प्रवर्तनायां लिघ्' ऐसा मत ही स्वीकार्य है यही विधि का अर्थ है। तो केवल प्रवर्तना में लिघ् हो इतना कहने मात्रा से ही लिघर्थ व्यक्त हो जाता। तो पाणिनी ने अपने सूत्रा 'विधि निमन्त्राणामंत्राणाधिष्टसम्प्रशनप्रार्थनेषुलिघ्'[26] विधि आदि शब्दो का प्रयोग अनावश्यक सिद्ध हो जाता है इस समस्या के समाधन हेतु कौण्डभट्टद्व ने फ्वैयाकरण भूषण में (भर्तृहरिकृत अस्तिप्रवर्तना.................।) इन दो कारिकाओ की व्याख्या की है। प्रथम कारिका प्रश्नात्मक है एवं द्वितीय कारिका समाधनात्मक है।

सूत्रा में विधि आदि चतुष्टय पदों का प्रयोग न्यायार्थ है अर्थात यह न्याय है के विशेष धर्म का ज्ञान होने पर साधरण धर्मा का ज्ञान होता है जैसे प्रवर्तनात्व यहाँ पर सामान्य धर्मा है उसका ज्ञान विधित्व आदि विशेष ज्ञान के पश्चात् होगा। शिष्य (छात्रा) की बुद्धि में विशद एवं स्पष्ट ज्ञान करवाने के लिए आचार्य पाणिनी ने सूत्रा में विध्यादि को पढ़ा है प्रवर्तना के व्यापक होने से विध्यादि अर्थों मे शक्ति है। अतः सूत्रा मे विध्यादि पदों का प्रयोग सार्थक है

**बालमनोरमा (वासुदेव दीक्षित)**

वासुदेव ने भी विधि का अर्थ प्रवर्तनात्व ही स्वीकार किया है यथा 'भृत्यादेः निकृष्टस्य प्रवर्तनम्' अर्थात् भृत्यादि निकृष्ट को कार्य में प्रवृत करना ही विधि का अर्थ है ऐसा स्पष्टीकरण दिया है।[27]

**कौण्डभट्टद्व का मत**

कौण्डभट्टद्व विधि का अर्थ प्रेरणा मानते हुए व्याख्या करते है 'भृत्यादेः निकृष्टस्यप्रवर्तनम्'[28] यथा स्वामी भृत्य से कहता है 'तुम वस्त्रा सापफ करो' अर्थात भृत्य की वस्त्राप्रक्षालन रूपी कार्य में प्रवृत्ति करवाना ही विध्यर्थ है अतः विधि का वास्तविक अर्थ प्ररेणा है जो कि 'वैयाकरणभूषण' में प्रवर्तनात्व रूप मे स्वीकार्य है प्रवर्तना का कारण इष्ट साध्नत्व को माना जाता है इष्टसाध्नत्व के बिना किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नही होती अतः प्रवर्तनात्व ही विध्यर्थ है, जो कि लिघर्थ से व्यक्त होता है।[29]

**निष्कर्ष**

अतः उपर्युक्त इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि कार्य में प्रवृत्ति के लिए इस साध्नत्व ही विशिष्ट कारण है। अतः इष्टसाध्नत्व के बिना प्रवृत्ति नहीं होती। इष्टसाध्नत्व के रूप में स्वीकृत है। वस्तुतः वही विधि का वास्तविक अर्थ है।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची**


1. *पा.अ.सूत्राः 3–3–161 'विधि–निमन्त्राणामन्त्राणाधीष्ट सम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिघ्'*
2. *लिघ् प्रत्ययः विधि प्रत्ययः!' वि.वि.ः – भूमिका, पृ.–81*
3. *'विधिप्रत्ययस्यार्थश्चात्रा आप्ताभिप्रायः आप्ताभिप्रायोनाम वेदवक्तृपुरूषाभिप्रायः। आप्ताभिप्राय एवं विविध्प्रत्ययस्यार्थः।' वि.वि., पृष्ठ–9*
4. *वि.वि. पृष्ठ–9*
5. *नियोगशब्दः कर्तृवाच्ये घ×प्रत्यये निष्पन्नो भवति – नियुघ्क्ते इति नियोगः। नियोगः नियोज्यं पुरुष नियोगस्य सिद्धये नियोगविषये नियुक्तम्। करोति–स्वसिद्धये नियोज्यं स्वविषये नियु×जानः नियोगः। वि.वि., पृष्ठ–9*
6. *वि.वि. पृष्ठ–9*
7. *'काम्यस्वर्गपफलाव्यवहितप्राक्कालो विद्यमानं वस्तु एव स्वर्गपफलस्य साध्नं भवितुमर्हति। यागक्रिया च क्षणविनाशनीति कालान्तरभाविनः स्वर्गपफलस्य अव्यवहित प्राक्क्षणे न विद्यते इति यागरूपक्रिया कार्यरूपे स्वर्गकामरूप–नियाज्येन सह अन्विता न स्यात्। यत् काम्यपफलस्य साध्नम् नास्ति तादृशकार्यं कदापि स्वर्गकामः पुरूषः नियोज्रूपेणान्वितो न भावितुमर्हति।' वि.वि. पृ. 9*
8. *'कार्यस्य स्वरूपप्रतीतौ यत् विषयरूपेण भासते तदेव कार्यस्य स्वरूपनिवर्तकरूपे करण– रूपेण भासते।' वि. वि., पृष्ठ–9*
9. *न्या. म. पृ. 25*
10. *वै.सि.प.ल.म. पृ 297 ;कार्य विधिरिति प्रभाकराःद्ध*
11. *भाट्टमते हि लिघादीनामर्थः अभिध विध्ैः व्यापारीभूतः विधि समवेतः भावनाख्यः अतिरिक्त पदार्थविशेषः अभिध। वि.वि., पृष्ठ–16*
12. *'अभिधख्या भावना यदा शब्दाश्रिता तदा शब्दाश्रितत्वादियं भावना शाब्दी भावनेत्युच्यते।' वि.वि., पृष्ठ–17*
13. *'मण्डनमिश्रस्य मते इष्टसाध्नत्वमेव विध्यर्थः।' वि.वि., पृष्ठ–12*
14. *यागो मत्कृतिसाध्यः, मत्कृतिसाध्यविरोधिर्मानध्किरणत्वात् इत्यनुमानेनैव कृतिसाध्यत्वस्य लाभात् तथा च कृतिसाध्यत्व प्रवर्त्तकत्वे्ऽपि' अनन्यलभ्यो हि शब्दार्थः' इति न्यायेन प्रदर्शितरीत्या अनुमानेनैव कृतिसाध्यत्वज्ञानस्य प्रवर्त्तकत्वलाभात् न तत्रा विध्ैः शक्तिरस्ति। वि.वि, पृ.–12*
15. *'न्यायमते क्रियागतेष्टसाध्नत्वं विध्यर्थः, भाट्टमते तु प्रवृत्तिगतमेव तदिष्टसाध्नत्वमिति विशेषः। भाट्टमते चाभिधया अभ्युपगमः, न्यायमते अभिधया अनभ्युपगमश्चेति वर्तते विशेषः। ' वि.वि., पृष्ठ–17*
16. *वात्स्या. 2/1/62_ न्या.को., पृ. –755 में उद्धृत।*
17. *अत्राभिध्ैव लिघर्थः। सैव च प्रवृत्तिहेतुः इति विज्ञेयम् (त.प्र.ख. 4 पृष्ठ–94)*
18. *अत्रा विधि शब्दस्य विधिरूपशब्दे इष्टसाध्नत्वादिरूपे विध्यर्थे च प्रयोगो दृश्यते। तत्रा विधयक कृति आद्योऽर्थिः। यद्वाक्यं विधयकं चोकदं स विधिः। विधिस्तु,*

नियोगो अनुज्ञा वा। यथा अग्निहोत्रां जुहुयात्स्वर्गकामः (शतपथ. 2) न्या.को., पृष्ठ–755

19. 'इष्टसाध्नता–बोध्क– प्रत्यय–समभिव्याहृत–वाक्यम्। विध्यभिधयक–प्रत्ययः। स च प्रत्ययो लिघ्लोट् लेट्तव्यकृत्यप्रत्ययरूपः इति। न्या.को., पृष्ठ–755
20. विधिर्नाम विधिप्रत्ययार्थः। अत्रा व्युत्पत्तिः विधियते विधिरूपशब्देन प्रतिपाद्यते{सौ विधिरिष्टसाध्नत्वादिः। स च प्रवर्त्तकज्ञानविषयो धर्मः। अयं च धमो। जरन्नैयायिकानां नये कृतिसाध्यत्वे सति बलवदनिष्टाजनकत्वसहितमिष्टसाध्नत्वम्। अत्रा कृतिसाध्ये तुप्तिरूपसुखात्मकेष्टसाध्ने च मधुविषसंपृक्तान्नीभोजने प्रवृत्तिवारणाय बलवदनिष्टाजनकत्वं विशेषणमावश्यकम्। अत्रा बलवदनिष्टं तु मरणम्। यदा च तादृश्याभोजनं बलवदनिष्टानानुनबन्धित्वेन ज्ञायते तदा स पुरूषः प्रवर्ततएव विज्ञेयम्। ;न्या.म.ख. 4, पृष्ठ 26–27द्ध। न्या.को. पृष्ठ–757
21. 'न कल×जं भक्ष्येत् इत्यादौ न×ा बोध्यमानो विशिष्टाभावः ;कृतिसाध्यविशिष्ट्यस्य बलवदनिष्टाजनकत्वविशिष्टस्येष्ट– साध्नत्वस्याभावःद्ध विशेष्यवति विशेषणभावे विश्राम्यतीति ;मु.गु. पृ. 228द्ध। एतन्मन्ये श्येनस्य हिंसारूपत्वं नास्ति इति श्येनेनाभिचरन् यजेत ;अथर्वब्राह्म.द्ध इत्यादौ बलवदनिष्टाननुबन्धित्वरूपो विध्यर्थो बोध्यते इति हृदयम्। यथा ओदनाकामः पचेत स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ ओदनस्वर्गादिरूपं यत् पफलम् तत्साध्नत्वं पाकयागादिक्रियायां प्रतीयते ;त.दी.द्धन्या.को. पृष्ठ –757
22. 'नव्य नैयायिक मते तु प्रवर्तकचिकीर्षायां तत्प्रकारकज्ञानस्य हेतत्वं स विधिः। कृतिसाध्यत्वादिज्ञानेन चिकीर्षा तया च प्रवृत्तिरूपद्यते इति समुदितार्थः ;न्याः म. पृष्ठ–27द्ध।
23. 'कृतिसाध्यत्वादि पदानां प्रयोजनं कथ्यते। पर्धैद्भः समुद्रं न तरेत् इत्यादौ न×ादिना समुद्रतरणादेः पर्धैद्भः प्रभृतिकृतिसाध्यनिशेध बोधनुरोधदवश्यं कृतिसाध्यत्वं लिघर्थः स्वीकार्यः। तृप्तिकामो जलं न ताडयेत् इत्यादौ जलताडनादेस्तृप्तिकामेष्टसाध्नत्वस्य निशेधान्वयानुपपत्त्येष्टसाध्नत्वं लिघर्थो{वश्यं स्वीकर्त्तव्यः। अपरे तु चैत्यं न वन्देत इति वाक्यप्रमाण्यानुरोधेनेष्टसाध्नत्वस्य विध्यर्थमावश्यकम् इति वदन्ति। न कल×जं भु×जीत इत्यदौ कल×जभक्षणादेर्बलवदनिष्टाजनकत्वस्य निशेधानुपपत्त्या बलवदनिष्टाननुबन्धित्वं लिघर्थो{वश्यं स्वीकर्तव्यः। कल×जो मांसविशेषः। न्या.को. पृष्ठ – 758
24. पा.अ., सू.सं. ;3–3–161द्ध
25. महा.भा. पृ.236;विधिर्नाम प्रेषणम्द्ध
26. क. ;अस्तिप्रवर्तनारूपमनुस्यूतं चतुर्ष्वपि। तत्रौव लिघ् विधतव्यः किं भेदस्य विवक्षया।। ख. न्यायव्युत्पादनार्थं वा प्रप×चार्थमथापिवा। विध्यादीनामुपादानम चतुर्णामादितः कृतः।। वै.भू. पृ.72
27. 'भृत्यादेः निकृष्टस्य प्रवर्तनम्' बा.म.–पृ.24
28. वैया. भू–पृ.73
29. 'प्रवर्तनात्वं च प्रवृत्तिजनक ज्ञानविषयतावच्छेदकत्वम् तच्चेष्टसाध्नत्वस्यास्तीति तदेव विध्यर्थः' वै.भू.सा – पृ. 96

**Please add Latest Review 2016**